साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत राजस्थानी कविता-संग्रह

गा-गीत

मोहन आलोक

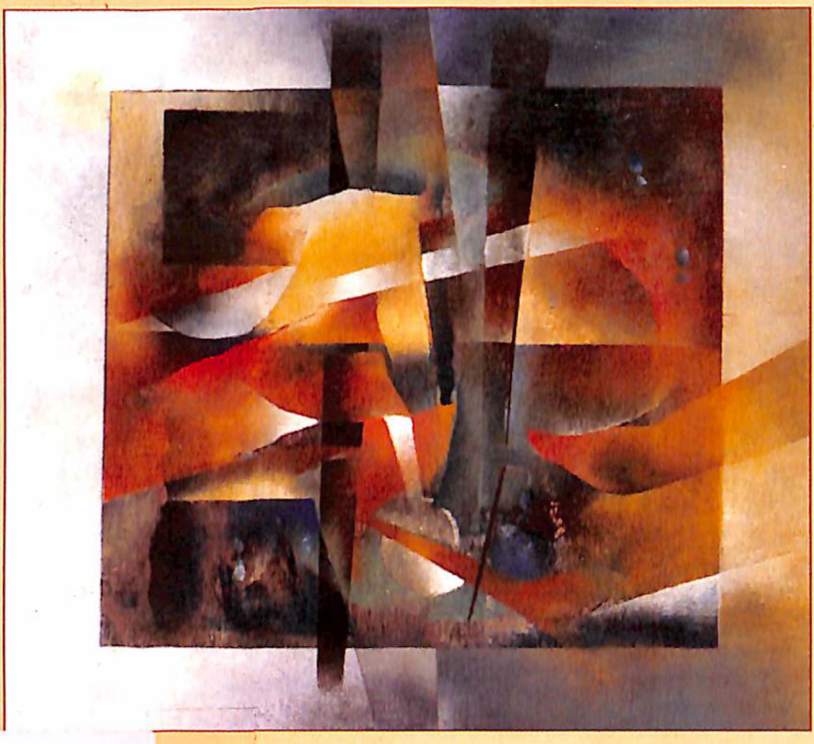

H
817.51
Aa 11 D

हिन्दी अनुवाद
नीरज दइया

H
817.51
Aa 11D

CELEBRATING FIFTY YEARS
(1954-2004)
साहित्य अकादेमी

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं, इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है । भारत में लेखन-कला का सम्भवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख ।

नागार्जुन कोण्डा, दूसरी सदी ई.

सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत राजस्थानी कविता-संग्रह

ग-गीत

मोहन आलोक

राजस्थानी से हिन्दी अनुवाद

नीरज दइया

साहित्य अकादेमी

Ga-Geet : Hindi translation by Neeraj Daiya of Akademi's award-winning Rajasthani poems by Mohan Alok. Sahitya Akademi, New Delhi (2004), Rs. 50/-

© साहित्य अकादेमी

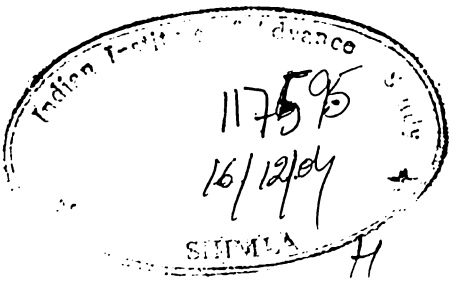

प्रथम संस्करण : 2004

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय :
रवीन्द्र भवन, 35, फीरोज़शाह रोड, नई दिल्ली 110 001
विक्रय विभाग : 'स्वाति', मंदिर मार्ग, नई दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय :
जीवनतारा बिल्डिंग, चौथा तल, 23 ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर रोड, कोलकाता 700 053
172, मुंबई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर (पूर्व), मुंबई-400 014
सेंट्रल कॉलेज परिसर, डॉ. बी.आर. आंबेडकर मार्ग, बंगलौर 560 001

चेन्नई कार्यालय :
मेन बिल्डिंग, गुना बिल्डिंग्स (द्वितीय तल), 443 (304), अन्ना सालइ, तेनामपेट, चेन्नई 600 018

Library IIAS, Shimla
H 817.51 Aa 11 D
00117595

ISBN 81-260-1901-8

मूल्य : 50 रुपए

शब्द-संयोजक : सविता प्रिण्टर्स, शाहदरा, दिल्ली

मुद्रक : विकास कंप्यूटर एंड प्रिण्टर्स, दिल्ली 110032

क्रम

1.	कह रे चकवा वात	7
2.	भाषा को जाने दो	9
3.	आओ! गाँव चलें	11
4.	रवि ने उचक/ शीत के स्कंधों	13
5.	कि लौटें भीड़ से/ बस करें	15
6.	साहू को मौज हुए/ दिन : प्रतिदिन	17
7.	अब के साल अकाल है फिर से	19
8.	होली है/ हाथ में गुलाल है	21
9.	किसी के पाँवों में पग़ी रखकर	23
10.	एक पल के लिए/ स्थिर रही	25
11.	क्या फ़र्क़ है—/ सूर्य और एक मनुष्य के जीवन में	26
12.	हरियाली के गए/ फैल गई रेत	28
13.	मैं बिरवा दो पान/ कि ऊपर अमर-बेल पसर गई	30
14.	वे दिन/ अब बीते दिन हुए	32
15.	यह उचित/ यह अनुचित	34
16.	लू/ इसका मुँह जले	36
17.	फ़रवरी है/ ऋतु वसंत की है	38
18.	काले बादल/ धोले बादल	40
19.	वायु में ज्यों बुलबुले हैं/ शब्द	42
20.	आओ!/ कुछ संयत हो	44
21.	भागे तो बहुत, मना!	46
22.	सुबह-सुबह ही आ चिड़िया	48
23.	प्रातः प्रभात हुई/ पूरब से	50

24. एक साल यह हुआ/ एक साल वह हुआ 52
25. चित्त के स्तर/ एक चीख़ उठती है नित्य 54
26. अब तो बस, महीने दो महीने 55
27. यह नदी है/ महा नदी है। 57
28. निकली चील/ गगन में उड़ती 59
29. मन की पीर/ गीत माली ने 61
30. तुम बिछुड़े/ फिर/ सब दिन उम्र में जुड़े 63
31. बालू पर लिखे हुए/ अक्षर : संबंध 64
32. धूप-सा है चिलचिलाता प्यार 66
33. गहरी काजल की करो रेख ग़ज़ल लिखूँगा 67
34. आप नाराज़ हैं कौन-सी बात से 68
35. तुम रूप का धन होने पर इस क़दर बदल गए 70
36. किसके पीछे फिरें अब उलाहना लिए 72
37. सामने शत्रु हो तो डरे आदमी 73
38. आज जितनी भी है, कम है, साक़ी कुछ और 74
39. ना!/ ना!!/ ना!!! 75
40. हुआ तो कुछ नहीं/ होना क्या था? 77
41. यह किया/ यह सुख दिया/ तुमने! 78
42. रे गीत! गीत!!/ पीर कुछ तो ब्यौंत मेरे भाई 80
43. छोड़-छोड़ सरोवरों का साथ गए हंस 82
44. धूल-धूल यों मत धुड़, रामलाल 84
45. फूल, फूल, फूल स्वर्ण-पुष्पी 86
46. क्या बतलाएँ हाल, मित्र दिन काट रहे हैं 88
47. तूठेगी कुछ माई, ईश्वर के भजन करो 89
48. गोपी जब से टोपी धारण करता है 90
49. आप मांदगी की जैसे-जैसे दवाई करते गए 91
50. क्यों करता है भूख से लड़ाई, कुछ होश कर 92
51. गीत भी कोई/ यों लिखे जाने की चीज़ है? 93
52. घर से दफ़्तर/ और/ दफ़्तर से घर 95

1

कह रे चकवा वात
कटे यह रात
यह बैरिन रात कटे।

घर-वीती कह, पर-बीती कह
पर मुँह को तो खोल
कुछ तो बोल! भरे जिससे
राक्षस एकांत की झोल

यों गुपचुप बैठे इस रात का
कब होगा प्रभात?
कह रे चकवा वात
कटे यह रात।

ये यादें, ये सख़्त सद्‌यदत्त
साजन से अलगाव
सोया सारा गाँव, नींद का
मुझ से मगर दुराव

पल-पल है पत्थर-सा भारी
पर्वत जैसी साअ़त[1]!

---

1. साअ़त : क्षण, पल

कहे रे चकवा बात
    कटे यह रात।

वाँटे से दुःख बँट जाता
है कथनी ज्ञानी जन की
हूंकारे के मिस निकलेगी
कुछ तो पीड़ा मन की

मन के हल्का हुए
दर्द कुछ हल्का होगा शायद

कहे रे चकवा बात
    कटे यह रात।

भाषा को जाने दो
भावों को आने दो
छंद, ताल, स्वर के लिए
मन को यों रोको मत
रोता है रोने दो
गाता है गाने दो।

उड़ने से रोको मत
मन तो एक पाखी है
दसों दिशाएँ इसकी हैं
कबीरा यदि कबीरा है
कहने दो, टोको मत
इस के तो मुँह से जो
निकलेगी साखी है
अनहोना रागी है
शुभ है (वह ही)
यदि सागी [1] है
कोई भय चूको मत
मुहूर्त्त है, ऊको [2] मत
पींगळ [3] : मत उलझो
मुँह को तो बाने [4] दो

---

1. सागी : वास्तव में
2. ऊको : चूको
3. पींगळ : छंद-शास्त्र
4. बाने : खुलने, बोने की क्रिया

छानो मत
जितना तुम छानोगे, छानस[1] है
जब कब भी हुई
हुई मानुष से भाषा है
जब कब भी हुआ नहीं
भाषा से मानुष है।

स्वयं ही सागर है तू
वाणी का घर है तू

गहरे में जाएगा
मोती ही पाएगा

खुद को खुद में लेकिन
गोता तो खाने दो।

भाषा को जाने दो
भावों को आने दो।

---

1. छानस : आटा छानने से प्राप्त, चापड़

3

आओ! गाँव चलें
और उसके पास ही
पहाड़ की तरह परसे हुए
टीले पर खड़े होकर
सूर्य को छिपते हुए देखें।

अपने घोंसलों को लौटती हुई
कौओं की क़तार देखें—
थकी हुई पाँखों की
उस सहज थकान को गुनें
दृष्टि की पहुँच तक
कल्मष में डूबते हुए
झाड़ों तथा खेजड़ों का मौन
हृदय से सुनें।

उजियाले पर सती होती हुई
सुहागन संध्या को
सिन्दूर से चौक लीपते हुए
देखें।

पूरे गाँव पर
जमती हुई गर्द की बदली निहारें
जंगल के 'फोगों' पर उतरता हुआ
धुआँ-जिएँ

हलों से अघाए हुए
बैलों की पसलियाँ गिनते हुए
भूख से निढाल
जुझारू हलवाहों की प्यास
आँखों से पिएँ
अपने बाड़ों को लौटती हुई
भेड़ों का ममत्व परखें
मिमियाते हुए मेमनों का
अपनी माँओं की छाती से चिपकना
देखें।

❑❑

रवि ने उचक
शीत के स्कंधों
की लुका-छिपाई
दिन निकला
'सी-सी' करते
माँ ने उठकर
चाय बनाई
दिन निकला।

शुक्र उदय पर
उठी और लेकर वर्तन में अन्न
पीस उसे वारीक शीघ्र ही
होते हुए प्रसन्न

चक्की को
भाभी ने अंतिम घुमाई
दिन निकला।

उत्तर दिशा की
शीत हवा से
वचते, बैठ पछींत[1]

---

1. पछींत : दीवार के सहारे लगी पत्थर की पट्टी

झगड़ रहे हैं बालक
करते तेरी-मेरी भींत

जोह रहे हैं बाट
धूप की बढ़े कड़ाई
दिन निकला।

'सी-सी' करते
माँ ने उठकर
चाय बनाई
दिन निकला।

5

कि लौटें भीड़ से
बस करें
आओ!
मनुष्य की मृत्यु पर
हरजस करें[1]।

पेट-पाँव
अलग होते हैं जहाँ
शर्म के संधिस्थल पर
किसी प्रकार बची हुई
इस चिथड़ा-चिथड़ा वस्त्र-पट्टी को
सिएँ लेकर सूई।

कुएँ में गिरती हुई
लाव थामें
चक्र को हाथ दें
निज-वश करें।

कि लौटें भीड़ से
बस करें
आओ!
मनुष्य की मृत्यु पर
हरजस करें।

---

1. हरजस करें : हरि कीर्तन करें

आओ!
उस कल हुई बात की
मुँहकाण[1] दें
सिर धुनें
'चोखले' चमार की बेटी
'सांतड़ी' के साथ हुए
उस ग़ज़ब को गुनें।

हृदय पर हाथ रखें
और
गाँव ही गाँव में हुई
इस बात पर
इमरस करें[2]।

कि लौटें भीड़ से
वस करें।

❑❑

---

1. मुँहकाण : श्रद्धांजलि
2. इमरस करें : रह-रहकर दुःख का अनुभव करें

साहू को मौज हुए
दिन : प्रतिदिन
'भोजा' को वोझ हुए
दिन : प्रतिदिन।

अकाल-अकाल
कार्तिक के कोल टले
बहियों में
कालिख के अंक रले
साँझ-साँझ साँसें पड़व्याज[1] हुईं
कुर्की के काग़ज़ इन्द्राज हुईं

उल्टी हुई गणना ही
अगहन[2] से
वापिस आसोज हुए
दिन : प्रतिदिन।

आयु के टीले पर
चढ़ते को
धसकन के खोज हुए
दिन : प्रतिदिन।

---

1. पड़व्याज : चक्रवृद्धि व्याज
2. अगहन : मार्गशीर्ष मास

दिन-दिन बेपर्त हुआ
प्याज-सा
पोली में ओढ़ सोया
माँदा-सा

नन्हा-सा 'अमरू', जब चीख़ उठा—
'माँ! रोटी।'
बेहूदा जीवन को झींख उठा—
'हाय रोटी।'

मुँह का पानी उतरा जव-जव,
अश्कों के 'धोज'[1] हुए—
दिन : प्रतिदिन।

मरते को और अधिक मारने को
दुश्मन की फ़ौज हुए—
दिन : प्रतिदिन।

❑❑

---

1. धोज : पानी का प्रवाह

अबके साल अकाल है फिर से
फिर से खेत हैं ख़ाली
आग लगे इसको
काली तट फिर खा गई
दिवाली।

इस दिवाली फिर से बच्चा
है मुँह सिलकर लेटा
फिर से आज रुँआसी माँ
बोली— कुछ तो खा बेटा!

आगे करती
भात शकुन का एक ग्रास
रख थाली
काले गुड़ को कूट
बनाकर शक्कर उस पर डाली।

अबके साल अकाल है फिर से
फिर से खेत हैं ख़ाली
आग लगे इसको
काली तट फिर खा गई
दिवाली।

'सयाने बेटे!
भूखे नहीं रहा करते
त्यौहार को
मेरे चंद्र को
अब जब होली आएगी दिन चार को
तब सुनना!
हलवा कर दूँगी
मादल-सा[1] सोनाली।'

रोकर बोली
और घूँघट से अपनी पीर
छुपाली।

अबके साल अकाल है फिर से
फिर से खेत हैं ख़ाली
आग लगे इसको
काली तट फिर खा गई
दिवाली।

❑❑

---

1. मादल-सा : क़ीमती, बहुमूल्य, तावीज-सा उपयुक्त गुणकारी

होली है
हाथ में गुलाल है
पर मसलें किसके
गालों का अकाल है।

'राधा' है
'रुक्मणि' है
यों तो पड़ोस में
बच्चे थे तब शायद
संग में भी खेली हैं
ऊँची हवेली है
पर उनके आजकल
साथ में बग़ीचा है
आधे-एक कोस में।

जिसके चौफेरे
एक लोहे की दीवाल है।

होली है
हाथ में गुलाल है
पर मसलें किसके
गालों का अकाल है।

'वह' है
और कहने को

यों तो भाभी भी है
पहली में आप अगर
काटें तो ख़ून नहीं
दूजी के कई बरस की
जूनी[1] टी.बी. है।

खाने को बैठें तो
जग है दो कौर मात्र
एक में मक्खी है
दूजे में बाल है

होली है
हाथ में गुलाल है
पर मसलें किसके
गालों का अकाल है।

❑❑

---

1. जूनी : पुरानी, वर्षों पहले की

किसी के पाँवों में पगड़ी रखकर
बीज उधार लाकर
रामू काका ने आज फिर अपने खेत में
शकुन स्वरूप हल चलाया है
हे रिद्धि-सिद्धि की देवी
इसकी सहायता करना
बीते बरस की तरह मत करना।

तीन बरस से
लगातार कड़की में रहकर
मरते-पड़ते इसने किसी तरह—
आषाढ़ लिया है
अबकी बार तो
इसकी ख़ाली हँडिया के
खुले हुए मुँह को बंद करना

भूख के मरखने भैंसे से
इसे बचाना
उसने इस बेचारे की बहुत दुर्गति की है
यह तो जी रहा है
यही इसकी हिम्मत है।

काकी के तीस तोलों की थी हँसुली
जो कि साहूकार के पास
बीस रुपये में गिरवी पड़ी है

उसे यदि इस वार भी नहीं छुड़वाया जा सका
तो वह राक्षस उसे आई-गई कर लेगा

इसकी डेढ़ वीस तोला चाँदी
चली जाएगी—सैंत-मैंत में
ऊपर से गाँव में हँसी होगी—
वह अलग

अगहन महीने के अंत में
इसकी लड़की 'विमली' का
गौना तय है।
जवान-जहान वेटी को
घर में रखा भी तो नहीं जा सकता

पिछले वर्ष
जिस दिन इसका विवाह हुआ था
इस वर्ष के उसी दिन
यदि उसे ससुराल नहीं भेजा जा सका
तो अगले वर्ष तक
इसे फिर रखना पड़ेगा— घर में ही!
वह एक बरस तक
फिर अखरती रहेगी।

इसके आँगन में स्थित
वेटी-रूपी इस पर्वत को
दूर हटाना
अवकी वार तो इसकी खेती में
बरकत करना।

❑❑

एक पल के लिए
स्थिर रही
सूर्य की गेंद
और फिर ढलान की तरफ़
लुढ़क गई।

पशुओं को पानी पिलाने के समय
अभी-अभी हल छोड़कर
बूढ़ी ऊँटनी को
चारे के बोरे के निकट बैठाकर
प्याज और छाछ के साथ
रोटी खाकर
चिलम का एक दम लगाकर
लेटे ही थे
कि वृक्ष की छाया
जहाँ थी
वहाँ से दूर खिसक गई।

एक पल के लिए
स्थिर रही
सूर्य की गेंद
और फिर ढलान की तरफ़
लुढ़क गई।

क्या फ़र्क़ है—
सूर्य और एक मनुष्य के जीवन में
अपने संध्याकाल में तो
दोनों का ही पश्चिम-गमन निश्चित है।

जन्म के समय तो दोनों के ही
चहल-पहल होती है
लोग ख़ुशी के थाल
वजाने की प्रतीक्षा में बैठे होते हैं

जन्म के समय तो दोनों के ही
ठंडी बयार बह रही होती है।

जैसे-जैसे बचपन बीतता है
और वे समझ पकड़ते है
दोनों को एक जैसे ही
ताप की तरफ़ बढ़ना होता है

जिसके अहसास वे मुस्कुराकर
मौन में प्रकट करते हैं।

दोनों ही फिर अपनी-अपनी ऊँचाई की
मंज़िल पर पहुँचते हैं
यौवन के अपरूप आलोक की
किरणें फैलाते हुए

अपने मध्यकाल में भी
दोनों एक जैसे ही जुनून में रहते हैं।

जीवन के मध्यकाल के बाद
दोनों को जब ढलते हुए देखते हैं
तो दोनों ही ऐसे लगते हैं
जैसे चालीस वर्ष के हो गए हों

दोनों का ही संवाहक समय
ढलान में उतरने लगता है।

अपने संध्याकाल में, सूर्य और
बाबा दोनों ही ऐसे लगते—जैसे बीमार हों
और मृत्यु उनको अपने घुटनों के
नीचे दाबने को तत्पर हो

तथा फिर जैसे समुद्र थोड़ा-सा
रक्त रंजित हो जाता है।

कोई फ़र्क़ नहीं होता—
सूर्य और मनुष्यं के जीवन में।

❑❑

हरियाली के गए
फैल गई रेत
खेत दर खेत।

खड़-सूख[1] होकर खड़ी रह गई
पथ पर उगी 'मुराली'[2]
सह शरीर पर शूल-वटोही
देते निकले गाली

इस अकथ्य के कहे
श्राप का
बढ़ा द्विगुण हो प्रेत।

हरियाली के गए
फैल गई रेत
खेत दर खेत।

थोथी कर दी जड़ें
खोद
चूहों, कोलों ने विल

---

1. खड़-सूख : खड़ी-खड़ी स्वतः सूखकर
2. मुराली : कँटीली झाड़ी

घाव गिने
'सांगा' ज्यों
न था शेष स्थान, एक तिल।

इस समस्त के हुए
साँस के
अंतर बढ़े—अचेत।

हरियाली के गए
फैल गई रेत
खेत दर खेत।

❑❑

मैं बिरवा दो पान
कि ऊपर अमर-वेल पसर गई
मम् विकास तो दूर
ज़िन्दगी दो अँगुल में सर गई।

तरसी एक किरण की ख़ातिर
यह नन्ही-सी जान
अंधकार को घूँट-घूँट पी
गले नित्य प्रति प्राण

बढ़ने की अभिलाष
समय संकेत
बकरियाँ चर गई।

मम् विकास तो दूर
ज़िन्दगी दो अँगुल में सर गई।

सिर का बोझ स्वीकार
जब कभी
ढूँढ़े अन्य स्थान
काया के 'कर' ने
बढ़-बढ़कर
दीवारें दी तान।

घेरों बँधी
तर्क की सारी
काट कुल्हाड़ियाँ जर[1] गई।

मम् विकास तो दूर
ज़िन्दगी दो अंगुल में सर गई।

---

1. जर : जंग

वे दिन
अब बीते दिन हुए
ये दिन
ही अब तो सब दिन हुए।

हवा में उड़ गए
हल्के थे
फूल से
सुगंध से
कपूर से
वे दिन।

बँट गए
कारिन्दों में
कामदारों में
कम थे
विवाह के व्यय की तरह
वे दिन।

समझ की संधि पर
सँभाले तो
मिले हुए बिना हुए।

पत्थर हैं
कंटक समूह हैं
बोझिल हैं
शूल हैं
ये दिन।

खटकते हुए कंकड़ है
दुखती हुई आँख में—
पड़ी धूल से
ये दिन।

काटें
किस तरह काटें
हैं— वामन के क़दम-दिन, हुए।

वे दिन
अब बीते दिन हुए
ये दिन—
ही अब तो सब दिन हुए।

❑❑

15

यह उचित
यह अनुचित
देखते ही न रहें
जो मन आए कहें
कुछ कहें!
कम से कम अबोले तो न रहें!

इस टीले, उस टीले
बीच की यह घाटी
शब्दों से पाट मित्र!
यदि जाए—पाटी।

गूँगे वन
मूँगे[1] मन
यों गिरवी न धरें
कुछ करें!
कंम से कम भोले तो न रहें!

तुम्हारी थी, प्रथम श्रेणी
वे संगमरमर शिले
जिन पर रख नींव
चुने दुष्टों ने क़िले।

---

1. मूँगे : महँगे

वे मूर्ति
कर स्मृति
एक-एक बूझें आ!
पाने को जूझें, आ!!
ठाकुर से सूझें, आ!!!
कम से कम किसी के गोले[1] तो
न रहें।

❑❑

---

1. गोले : ग़ुलाम, चाकर

16

लू
इसका मुँह जले
जला गई मुँह।

सूरज :
जैसे दूर एक जलता हुआ
लकड़ियों का ढेर
ढेर की लपटों में
झुलसता हुआ गिरगिट
मैं जैसे उस गिरगिट की तरह हूँ
और गिरगिट
जैसे मेरी तरह है।

लू
इसका मुँह जले
जला गई मुँह।

भड़भूँजे के भाड़ की तरह है
चारों सीमाएँ
जीव-जगत
दैवयोग से
उसमें दानों की तरह गिर गया है

भूँजा[1] जा रहा है
भरड़-भरड़ कर रहा है
(बुदबुदा रहा है)
जैसे कि मैं कर रहा हूँ।

थम जाती है तो उमस होती है
और चलती है
तो लपटें निकलती हैं
आकाश से
आग का बादल बरस रहा है!

रेत के
निठल्ले पड़े खेत में
दावानल बढ़ रहा है।

लू
इसका मुँह जले
जला गई मुँह।

❑❑

---

1. भूंजा : भुना

फ़रवरी है,
ऋतु वसंत की है।

धूप सेंकती दादी बोली—
'हाय राम, फिर बादल आया!'
मोठ फटकती माँ भी खिसकी
इधर धूप ने उसे सताया।

फ़रवरी है
शरारती छोकरी है
ऋतु वसंत की है।

कल ही उधर 'अबोहर' की दिश
सुना कि ओले बहुत पड़े
कर दी नष्ट फ़सल सरसों की
पाव-पाव से बड़े, पड़े।

फ़रवरी है
जनवरी से बुरी है
ऋतु वसंत की है।

'लल्ली चल अपने बिस्तर में'
कार्तिक के पश्चात, बड़ी—
रहे दाबते, गए शीत पर
वह जुकाम में है जकड़ी।

फ़रवरी है
जाते-जाते तूठ[1] रही है
ऋतु वसंत की है।

❑❑

1. तूठणौ : प्रसन्न होना

18

काले बादल
धोले[1] बादल
बड़े ग़ज़ब के गोले बादल।

मनमौजी हैं कर[2] जुड़वा दे
ये बरसें तो, साअ़त[3] में
लगे बरसने, फ़र्क़ न रखें
ये दिन में और रात में

वर्षा करते भाग-भाग
बच्चों ज्यों
कर-कर रोले[4], बादल।

मन न हो तो, क्षण में जुड़कर
क्षण में ही हट जाते हैं
जोड़ें हाथ, निहोरे खाएँ
वर्षा से नट जाते हैं।

रोएँ आप, नहीं सुनते फिर
बन जाते हैं बोले[5] बादल!

---

1. धोले : सफ़ेद
2. कर : हाथ
3. साअ़त : पल
4. रोला : शोर
5. बोले : बहरे

सबसे बुरा रूठना इनका
यदि आ जाए क्रोध में
हुई फ़सल को, जला डालते
बरस-बरस, प्रतिशोध में।

फिर कह देते—'हम क्या जानें?'
बन जाते हैं भोले बादल।

रेवड़ के पाली का, इनका
बात-बात पर बैर है
उनकी, इन से नहीं बिगड़ने—
में ही समझो ख़ैर है।

बिगड़े तो बावला बना दें
मार-मारकर ओले बादल।

काले बादल
धोले बादल
बड़े ग़ज़ब के गोले बादल।

19

वायु में ज्यों वुलवुले हैं
शब्द
एक अकलुष भींत है
और वास के[1]
वच्चों की जेवों में भरे हुए
कोयले हैं, शब्द।

पहुँच की हद दृष्टि के
और पीठ के पीछे
जहाँ पर व्योम मिलने भूमि से
है उतरता नीचे
उसके और पीछे
और न्यारे
और अँधियारे
उजियास-सा बनकर
छले हैं—शब्द।

ब्याध हैं
बाण हैं
कृष्ण की पगतली हैं
बरसता मेघ हैं
बोझिल होती कबीर की
कंबली हैं।

---

1. बास के : मोहल्ले के

मरता मनुज हैं
कुरुक्षेत्र हैं
और 'कर्बला' हैं
शब्द।

वायु में ज्यों बुलबुले हैं
शब्द
एक अकलुष भींत है
और वास के
बच्चों की जेबों में भरे हुए
कोयले हैं, शब्द।

20

आओ!
कुछ संयत हों
सिकुड़ जाएँ
साँप हम
चूहे के बिल में घुस जाएँ।

भागती सड़क है
शहर है
लोगों की भीड़ है
बड़ी
किसी के पाँव तले
दब न जाए
हमारी पूँछ (ड़ी)।

समेटें
ध्यान रखें
क्यों किसी से सिर-धड़ की
बाजी लगाएँ।

आओ!
कुछ संयत हों
सिकुड़ जाएँ।

मुँह में ज़हर है
उगले क्यों
यों करें
जब विष ग्रंथि भरे
कुलने लगे
पत्थरों को काट खाएँ
या
पड़े-पड़े स्वयं को ही
मुड़-मुड़ डसें।

साँप हम
चूहे के बिल में घुसें।

❑❑

21

भागे तो बहुत, मना!
स्थिर रहकर देख तनिक
स्यात[1]...।

सूवै-सा[2] पढ़-पढ़कर
ग्रंथों में पाया क्या?
केवल अज्ञान
शब्दों के 'मरगोजे'
फूटे तो पीर मिली
बींध गए कान।

पाता कब, दिए कोई?
पहुँचा कब, लिए कोई?
ख्यांत[3]...।
स्थिर रहकर देख तनिक
स्यात...।

पहले के पथिकों के
राहों पर अंकित तू
पदचिह्न न शोध
शोधन से मिलते कब

---

1. स्यात : शायद
2. सूवै-सा : तोते-सा
3. ख्यांत : ध्यान से देखना

अंबर में उड़ निकले
पक्षी के खोज

हो मत निराश अभी
मन की पहचान कभी
जाति...।

भागे तो बहुत, मना!
स्थिर रहकर देख तनिक
स्यात...।

❑❑

सुबह-सुवह ही आ चिड़िया
नीड़ हमारे गा, चिड़िया।

क्या मालूम तेरे स्वर गूँजे
मौन मेरे इस मन का
तेरी होड़ चलूँ मैं भी
चुनने को दाना-दुनका

पंख मेरे खुलवा चिड़िया
उड़ना मुझे सिखा चिड़िया।

तेरे-मेरे मध्य चिड़ी!
है गहरा एक विघ्न
मेरे पास विघ्न की जड़ है
एक मूँगे-सा मन

चुपके से चुग जा चिड़िया
पीछा मेरा छुड़वा चिड़िया।

च्यों-च्यों, च्यों-च्यों, च्यों-च्यों, च्यों-च्यों
तेरे गीत निरर्थ
मैं भी सुनकर शायद
समझ सकूँगा इनके अर्थ!

अपने गीत सिखा चिड़िया
मेरे कंठ गवा चिड़िया।

बच्चा जान, मुझे चुग्गा दे
एक बार तू मन से
तेरी जूठ, छूट जाऊँ—
शायद मानव जीवन से!

मेरा मान कहा चिड़िया!
अपने झुंड मिला चिड़िया!

23

प्रातः प्रभात हुआ
पूरव से
संध्या को रात हुई
पूरव से।

किसका प्रतीक करें पूरव को
दोनों ही बातें हुई पूरब से।

धरती के गुंवद पर
शिशु-जैसा दिनकर जब
आता है
तेज़-तेज़ दिपता है
एक तरफ़

बूढ़ा हो मृत्यु प्राप्त
मानव-सा, वही स्वयं
पहले कुछ थोड़ा-सा
छिपता है
एक तरफ़।

एक तरफ़ शोक पड़ा पूरब में
दूजे चहचहाट हुई पूरब से।

सूरज कब थकता है
थकते तो हम-तुम हैं
एक दृष्टि थकती है
बादल तो बादल है
पानी है,
फ़सलें सब
पानी से पकती हैं।

पृथ्वी में अगले से
बीज हुआ जैसा भी
वैसी शुरुआत हुई पूरब से
दुःख में दुःख की
सुख में
सुख की बरसात हुई पूरब से।

प्रातः प्रभात हुआ
पूरब से
संध्या को रात हुई
पूरब से।

❑❑

24

एक साल यह हुआ
एक साल वह हुआ
मानते हैं कि हुआ
लेकिन एक साल ज्यों हुआ
वह केवल उसी साल क्यों हुआ?

साल-साल सब एक हैं
इनमें अंतर किस बात का
वे ही उजले दिवस हैं
वही अँधेरा रात का

वही चार दिन की चाँदनी
चाँद का घटना-बढ़ना
विगत वर्ष की भाँति
उन्हीं पदचिह्नों चढ़ना।

धूप की तपन हुई
तो बादलों से ही हुई छाया।

हवा भी वही चली
फूल भी वही खिले
प्रतीक के बिना, भ्रमर
उड़े एक-एक कली से मिले

वही वैशाख में धूप तपी
और आषाढ़ में मेह[1] हुआ

---

1. मेह : बरसात

कोई नदी यदि उफनी
तो आस-पास विनाश हुआ

चटख धूप का प्रारंभ
यदि हुआ तो चैत मास से ही हुआ।

फिर कहाँ अंतर आया
कि एक साल कुछ हुआ
और दूसरे के आते ही
नज़ारा कुछ नया हुआ

दिन जब वही रहा
रात जब वही रही
वर्ष-चक्र घूमा पर
बात वही की वही रही

तो क्या था जो बदल गया
मनुष्य या प्रकृति नटी
कि एक वर्ष जो घटना घटी
वही दूसरे वर्ष क्यों नहीं घटी

बरसात वैसे ही वैसे हुई
शीत वैसा का वैसा रहा

तो मनुष्य का किया ही
बदल-बदलकर क्यों हुआ?

❑❑

25

चित्त के स्तर
एक चीख़ उठती है नित्य
और नित्य खो जाती
पेट की गहराई में।

तड़फ-सी एक उठती है
ग़लत करों में
कंठ सौंपते हुए
कँपकँपी-सी छूटती है
अनहोनी को स्वयं पर
थोपते हुए।

तोड़ने को मौन
एक क़दम उठता है नित्य
दूसरा थम जाता है
पेट की गहराई में।

❑❑

26

अब तो बस, महीने दो महीने
मर जाएँ तो ठीक हो।

जीवन एक यात्रा
होती मृत्यु जिसका विश्राम
सुस्ताने को पर इस पथ का
लंबा बहुत विराम।

अतः बीच में एक बार कुछ
ठहर जाए तो ठीक हो।

दिन : चेजारा[1] रखता तन पर
पत्थर एक सँभाल
रात : तगारी इक गारे की
नित जाती है डाल

इस चुनती से एक बार कुछ
उबर जाएँ तो ठीक हो।

भच्चक भीड़, भीड़ में फिर
यह क़िस्त-क़िस्त एकलापा
सन्नाटे में रह-रह जगता
चौंक-चौंककर आपा

---

1. चेजारा : मज़दूर

एक बार इस सन्नाटे से
भर जाएँ तो ठीक हो।

कस्तूरी के लिए भागता
मन-मृग हुआ अपंग
रही नहीं तन को ढोने की
घुटनों की आसंग[1]

यों टूटे, कहीं थोड़ी देर—
पसर जाएँ तो ठीक हो।

अब तो बस, महीने दो महीने
मर जाएँ तो ठीक हो।

---

1. आसंग : आशक्ति, हिम्मत

27

यह नदी है
महा नदी है।

गोल-गोल घाटियों में
घूम-घूम पसरी है
जूनी है
कौन जाने
कितने बरस की है।

यह नदी
महा नदी है।

यह मनुज के रास्तों से
है बही हज़ार बार
मनुज गया जहाँ-जहाँ
वहाँ गई
यह हज़ार बार।

यह नदी तो
माँ नदी है।

यह बँधी कहाँ
यह जब बँधी
तो भ्रम बँधा

या हम बँधे
ठीकरों के टेकरे बँधे
वृथा थेह[1] बँधे।

यह नदी है
महा नदी है
यह किसके बस की है
गोल-गोल घाटियों में
घूम-घूम पसरी है।

रोक-टोक
लोक-शोक
सहती-भोगती
बही सदा
सदा बहेगी भागती।

अनागतों को हर्ष यह
विगत की त्रासदी है।

यह नदी
महा नदी है।

❑❑

---

1. थेह : ढेर

28

निकली चील
गगन में उड़ती
खिंचती गई लकीर।

वीच पृष्ठ
पुस्तक को पढ़ते
हिलने लगे कथानक।
किसी अचीन्हे
चित्रकार ने
मांडे[1] चित्र अचानक।

निकली कीलें
गिरती भींतें[2]
टँगने को तस्वीर।

शून्य टँगी आँखों ने
देखा—
चित्र विगत का फिरता

फटी नज़र
मन ने महसूसा
छत को ऊपर गिरता।

---

1. मांडे : बनाए
2. भींतें : दीवारें

निमिष मील के
हुआ बराबर
पल, द्रौपदी का चीर।

निकली चील
गगन में उड़ती
खिंचती गई लकीर।

29

मन की पीर
गीत माली ने
यों बीनी ज्यों फूल।

एक गया तो
दूजा लौटा
इस सूने घर भाव
तह दर तह, यों—
जमते तम का
बढ़ता गया दबाव।

तन की माँग
दबावों चटकी
कींवाड़ों की चूल।

टप-टप बूँदों ने
उलझाए—
दो आँखों के ठाँव

चुन-चुन धरे
छंद की सीपी
ये सारे अनुभाव।

आँखें मूँद
मोतियों ढाली
हिय में उठती हूल।

मन की पीर
गीत माली ने
यों वीनी ज्यों फूल।

30

तुम विछुड़े
फिर
सब दिन उम्र में जुड़े।

एक-एक श्वास लगी
यह आई, वह गई
सर्पिणी-सी घुसी सरक,
निकली तो खा, गई।

ज़हर चढ़े
काया के
कंगूरे झड़े।

दिन : आया, शनैः शनैः
निकट एक सन्नाटा
हिय पर एकांत जमा
रोज़-रोज़ बन भाटा

रात हुए
रोतों के
अश्रु क़म पड़े।

बालू पर लिखे हुए
अक्षर : संबंध
स्थिर थे
जव तक थी
लिखती हुई अँगुली।

कैसा पागलपन था
गिरती दीवारों को
खड़ी समझ वहला जो,
मेरे ही भीतर का
रक्त-शेष वचपना था

रखती पर रेत
कहाँ
स्थिरता से हेत
अपने स्वभाव
पसर रहती है पँगुली।

कहने को 'पाटी' थी
धोरों की धूल
निबल।
हिला गया पवन उसे
अंत-पंत, माटी थी।

'वरता' था हाथ
उठा
उठते ही साथ उठा
भटके हुए शव्द गए
न जाने किस गली!

वालू पर लिखे हुए
अक्षर : संवंध
स्थिर थे
जव तक थी
लिखती हुई अँगुली।

❑❑

32

धूप-सा है चिलचिलाता प्यार
वरसती बदली-सा भाता, प्यार।

लटकते नीलाभ की इस छान—
का वज़न स्वयं पर उठाता, प्यार।

एक ज्वालामुखी धरा के गर्भ
फूटने को कसमसाता, प्यार।

प्यार मंदिर है, औ' मस्जिद भी
मुक्ति का है पथ बताता, प्यार।

आलपिन, यदि बाँध दे दो मन,
अन्यथा लौह-तृण चुभाता, प्यार।

❑❑

33

गहरी काजल की करो रेख ग़ज़ल लिखूँगा
आपके नयन-नक्श देख, ग़ज़ल लिखूँगा।

रूप में होश लुटे, होश उठे, लिखने के
होश जब होंगे यों निःशेष, ग़ज़ल लिखूँगा।

देखकर आपको धुल गई मन की स्याही
इसी स्याही में क़लम टेक, ग़ज़ल लिखूँगा।

आपका हँसना खिलाता है अदब के नए फूल
फूल चुन-चुन के ये कुछ एक, ग़ज़ल लिखूँगा।

हैं पल-पल के ये बिम्ब आपके एक-एक ग़ज़ल
हज़ारों एक के बाद एक, ग़ज़ल लिखूँगा।

मन के मंदिर में, मैं गा-गा के भजन की मानिन्द
आपके नाम की रख टेक[1], ग़ज़ल लिखूँगा।

❑❑

1. टेक : गीत का स्थायी पद

34

आप नाराज़ हैं कौन-सी वात से
आज फिर कुछ हुआ क्या मेरे हाथ से?

पल पिघलते हो, पल में ही पापाण हो
पल में दुश्मन हो पल में मेहरवान हो
आपके वन-विगड़ने का विश्वास क्या?
अंत खोओगे तुम, है जैसी वात से।

तन पर पहरे ही रखने थे यदि रीत के
छोड़िए, घर वहुत दूर हैं, प्रीत के
चाहे दुनियां तुम्हारे क़दम चूम ले
प्यार वाहर है, तुम्हारी औक़ात से।

कैसे अहसान करते हो तुम हर घड़ी
माँग खाना ही हो तो है दुनिया पड़ी
हमने आकर पराए में पाया ही क्या?
गाँठ का, फूल-सा मन गया हाथ से।

वहुत पाली भी, दीवानगी रूप की
थक गए कर के, पर आरती रूप की
तन को तृण कर के मन में ज़हर भर लिया
और मिला क्या तुम्हारी मुलाक़ात से।

झूठे, विश्वासघातों में खो जाए तो
आप जैसे सभी लोग हो जाए तो
आदमी को रहेगा न आलोक फिर
कल को विश्वास कुछ आपकी जात से।

35

तुम रूप का धन होने पर इस क़दर बदल गए
लेकिन तुम्हारे वे प्रण क्या हुए, जो तुमने ही थे किए

तुम्हारे पाँव यदि थे इस क़दर नरम
खाई किसलिए साथ चलने की क़सम
तुम्हें पता था यह काँटों भरी राह है
फिर किसलिए हमारे हमराही हुए?

रामू-चनणा के क़िस्से अब क्या हुए?
हीर बनकर तुमने किए थे जो कौल, वे क्या हुए
रांझों का अब भी बीजानाश नहीं हुआ है
ढोले अब भी बहुत है, यदि मरवण सामने हो।

जीवन जैसे भी कटेगा हम काट ही देंगे
किसी का रोना यहाँ सुनता ही कौन है?
रोना तो यह है, उदय होते ही अस्त हो गया
साँझ ढले यदि छिपता तो शिकायत ही क्या थी?

जब से आप जैसे निकृष्ट लोग होने लगे हैं
पृथ्वी पर कलयुग आ गया है
धरा पर सीता जैसी सन्नारियों ने जन्म लेना बंद कर दिया
अब न राम-लक्ष्मण जैसे लोग जन्मते हैं, न श्रवण जैसे।

न तो अंवर गिरेगा न पृथ्वी हिलेगी
सृष्टि जैसे चल रही है वैसी ही चलेगी
मूल्य मनुष्य का नहीं उसकी बात का होता है
तुम्हारी तरह रूपवान होने से क्या होता है!

मैं नहीं जानता था तुम निर्वाह ऐसे करोगे
कि जागते हुए मुझको पैताने डाल दोगे,
अव तो हाल[1] यह है जव मुँह के सामने दर्पण होता है
तो मोहन को आलोक से शर्म आने लगती है।

---

1. हाल : वस्तुस्थिति

36

किसके पीछे फिरें अब उलाहना लिए
और होता भी क्या है उलाहाना दिए
भंग हुआ, कच्ची मिट्टी के वर्तन-सा था
भाग्य मेरा, तुम्हें क्या उलाहना प्रिये!

❑❑

37

सामने शत्रु हो तो डरे आदमी।
सब करे, मार दे या मरे आदमी
लेकिन संग के साथी, स्वयं-मित्र ही
जब गला रेत दें क्या करे आदमी?

मनुज पी-पीकर हँसता मनुज का रक्त
हो कोई जैसे खाने की, उसके, वस्तु।
मरते, शत्रु हों टुकड़े को लड़-लड़ जहाँ
मित्र खाएँ तो कब तक निभे आदमी।

यहाँ लुटेरों का गढ़ और यह अनमोल मन
कोई मुठ्ठी में रखे तो कितने'क दिन
जव हों घर के रक्षक बुरी नीयत के
तो इस हीरे को किसके धरे आदमी।

क्या करे 'दमयंती' और क्या 'नल' करे
आदमी से समय जब स्वयं छल करे
जब कि हारों को हैं निगलती खूँटियाँ
और चोरी की हामी भरे आदमी।

❑❑

38

आज जितनी भी है, कम है, साक़ी कुछ और
हृदय में आग का आलम है, साक़ी कुछ और।

तेरे मुजरे, तेरी मनुहारों की फ़ुरसत नहीं आज
लगता है आख़िरी दम है, साक़ी कुछ और।

यों वहाने न बना, मुझको दिखा, ख़ाली सुराही
रात खींची वह क्या कम है, साक़ी कुछ और।

आज दे इतनी कि इस रात की रात ही रह जाए
एक 'वायदे' का सितम है, साक़ी कुछ और।

अरी, कंजूस तेरे हाथ से छूटता नहीं छींटा
हाथ से उठती ही कम है, साक़ी कुछ और।

जव आता हूँ तो पाता हूँ कि सब आ के गए भी
गाँव के लोग अधम है, साक़ी कुछ और।

'मोहन आलोक' को भावों की पिला बनाके 'सरस्वती'
उसके हाथों में क़लम है, साक़ी कुछ और।

ना!
ना!!
ना!!!
न विखरे तो भली
खींप की फली
यह मेरा मन।

क्या बोला— वीज?
बीज पंखों समेत होंगे
श्वेत होंगे
सहोगे तुम न वायु की घुटन
और कहीं दूर खेत होंगे।

ना!
ना!!
ना!!!
न निकले तो भली
यह मन की सली
विथा का तृण।

क्या बोला— पीर?
पीर मुझ ही तक पावन
सरस सावन
सहोगे तुम न माघ की झड़ी
कहीं ढूँढ़ोगे पहरावन।

ना!
ना!!
ना!!!
न बिफरे तो भली
आँखें ये जली
क्षार वर्षण।

न बिखरे तो भली
खींप की फली
यह मेरा मन।

40

हुआ तो कुछ नहीं
होना क्या था?
यों ही कुछ टूट गया
अधर में लटकता-सा।

उगा रात मुझमें ही
सूरज एक 'पौन' वजे
छुपना तो निश्चित था
प्रश्न वचा, कौन वजे?

स्वप्न भंग होने का—
भी होता समय कोई?
सो थोड़ा रीतापन
रह गया खटकता-सा।

शून्य से माँगे रंग
चढ़ने तो किसको थे
मन को वहलाने की
भावुक कोशिश को थे।

सत्य आकार रहित
कव अपने मुँह वोला
'पौन' कहा मुश्किल से
वायु ने अटकता-सा।

❑❑

41

यह किया
यह सुख दिया
तुमने!

चेतना को दी
निर्बल-सी चींटियों की
पाँखें
चाँद का दे लक्ष्य
अंबर में थमाई
आँखें।

मैं जब उड़ा
संकेत आँधी को किया
तुमने!

अपरिचित पथ
अनजाने घर
मनुज थे तो
मगर जल्लाद की नांईं
ठगों का गाँव
ऊपर से 'ममीरे' के
थे चारों ओर व्यवसायी।

यों ऐसे में
अपरिचित बन के परिचित से
बहुत बेजा किया
तुमने!

दुश्मनों से करे कोई
वह किया
तुमने!

यह किया
यह सुख दिया
तुमने!

❑❑

रे गीत! गीत!!
पीर कुछ तो ब्यौंत मेरे भाई।
चलेगा कैसे, यों रहे नचीत, मेरे भाई।

खुरदरा-सा एक मौन आँगन उतर
मर गया पसर-पसर निस्तब्धता से घर
साँय-साँय जीत गई जीभ को, जुए
राग-रंग जा गिरे न जाने किस कुए!

शून्य इक सघन-सा, गया जीत मेरे भाई।
भाग गई गाँव छोड़ प्रीत, मेरे भाई।

स्वार्थों की धूप में, मनुष्यता के तिल
तड़क-तड़क समस्त, धूल में गए हैं मिल
देश-द्रोहियों ने सारी फ़सल दी उजाड़
वर्तनों में भरे दूध को दिया बिगाड़।

पात पीपलों के भए पीत, मेरे भाई।
आदमी पे गिर पड़ी है भींत, मेरे भाई।

भाव-न्याय सारे ठंड में ठिठुर गए
सदाचार की वहान वैल चर गए
भूख-भूख मानवों के मुँह हुए हैं, ज़र्द
एक-एक अंक भरी मृत्यु वाली फर्द।

वैठ गए पनघटों, पलीत मेरे भाई।
चिल्लाहटों में खो गया संगीत मेरे भाई।

जीतते चुनाव चोर, रोशनी को चीर
खंड-खंड कुर्सियों पे उग गई है थोहर
अंधी वाला आटा भाई चाट गए श्वान
भौंक-भौंक कर दिया है भूख का ऐलान।

रक्षक हुए भक्षकों के मीत मेरे भाई।
आदमी का रोना हुआ रीत मेरे भाई।

छोड़-छौड़ सरोवरों का साथ गए हंस
ठौर-ठौर वढ़ चले हैं काँव-गण के वंश।

कौन गिनता अश्व वढ़े
या कि ख़र वढ़े
हिसाव की किताव
तोड़-मोड़कर वढ़े

छोड़कर वढ़े
समय की शाख-शाख दंश
ठौर-ठौर वढ़ चले हैं काँव-गण के वंश।

अंधकार जन्मता गया
मग़ज[1] की थोथ
गिर गई जगह-जगह
मनुष्यता की लोथ

सोख गई मोथ[2]
उग के सव धरा अंश
ठौर-ठौर वढ़ चले हैं काँव-गण के वंश।

---

1. मग़ज : मस्तिष्क
2. मोथ : मौथा घास

तपा गया तेरा-मेरा
मूँगे जैसा मन
नीर से बुझी न फिर
उठी जो यह अगन

नव-सृजन की ओट में
विजयी हुआ विध्वंश
ठौर-ठौर बढ़ चले हैं काँव-गण के वंश।

पुण्य के ही वृक्ष
फूटी डाली पाप की
सज़ा मिली ये जाने
कौन-से श्राप की?

'अग्रसेन' बाप की
औलाद हुई कंस
ठौर-ठौर बढ़ चले हैं काँव-गण के वंश।

❑❑

44

धूल-धूल यों मत धुड़[1], रामलाल
अघा गए वापिस मुड़, रामलाल!

वर्तन पर वर्तन है
तह दर तह
देख लिए सवके सव
ख़ाली हैं।

ठोकर दे जाए गुड़[2], रामलाल
कभी न फिर पाएँ जुड़, रामलाल!

रास्ते में जगह-जगह
देखा है
शामत है तेरी तू
मीठा है।

जव तक तू है गुड़, रामलाल
खाएँगी ही मक्खी जुड़, रामलाल!

सीधे हैं वृक्ष जो
कटेंगे ही
टेढ़ों को पारखी
नटेंगे ही।

1. धुड़ : गिर, ढह
2. गुड़ : गुड़ना, लुढ़कना

अष्टावक्र वन जा कुड़[1], रामलाल
अघा गए वापिस मुड़, रामलाल!

फूल-फूल फूलों से
सीखा तू
अब हो जा काँटों-सा
तीखा तू।

तोड़े जो तुझे नोच, रामलाल
उनका तू मुँह खरोंच, रामलाल!

धूल-धूल यों मत धुड़, रामलाल
अघा गए वापिस मुड़, रामलाल!

❑❑

---

1. कुड़ : कुड़ना, टेढ़ होना

45

फूल, फूल, फूल स्वर्ण-पुष्पी
फूल—
वन त्रिशूल, स्वर्ण पुष्पी।

प्यास-प्यास
इस तरह न कंठ को सुखा
है पवन कभी की
अपनी गति वदल चुका
रेत-रेत सावचेत आगे वढ़ गई
एक मात्र देख तू ही है पिछड़ गई।

चढ़ गई है शीश—
शेष धूल, स्वर्ण-पुष्पी।

दुःखी-दुःखी
री! क्यों दुःखी है तू
जाति से
मूरजमुखी है तू

आस-पास
घास को उजास दे
खेत-खेत में दिए-से चास दे

न घुट यों अंधकार में
फ़िजूल, स्वर्ण-पुष्पी।

नर्म-नर्म थी
तू स्वाद थी
हरी-हरी
तभी तो तुझको चुनकर
नील गायों ने चरी।

बचाव कर
बदल स्वभाव, बावली!
'अलाय'[1] बन
'मुराल'[2] बन औ शीघ्र ही।

पत्ते-पत्ते में उगा ले
शूल, स्वर्ण-पुष्पी।

फूल, फूल, फूल स्वर्ण-पुष्पी
फूल
बन त्रिशूल, स्वर्ण-पुष्पी।

❑❑

---

1. अलाय : कँटीली झाड़ी
2. मुराल : कँटीली झाड़ी

46

क्या वतलाएँ हाल, मित्र दिन काट रहे हैं
करते आटा-दाल, मित्र दिन काट रहे हैं।

सिर पर एक झोंपड़ी थी, कुछ छाया थी
वह भी हुई निढाल, मित्र दिन काट रहे हैं।

जो 'ना कुछ थे', उनको, सब कुछ वना देख
दवा क्रोध की ज्वाल, मित्र दिन काट रहे हैं।

वहने से डरते, पहले ही बाँध-बाँध
पानी आगे पाल, मित्र दिन काट रहे हैं।

रंग वदल गया, काल क्रूर ने पीट-पीट
नीली कर दी खाल, मित्र दिन काट रहे हैं।

योनी भुगती बस, जीने तो क्या देते
नित-प्रति के आकाल, मित्र दिन काट रहे हैं।

कुछ तो थे ही, रहे-सहे महँगाई ने
किए हाल-वेहाल, मित्र दिन काट रहे हैं।

कुशल-क्षेम के समाचार, बस इतने हैं
जीवित हैं फ़िलहाल, मित्र दिन काट रहे हैं।

जोह रहे बाट कि इस बस्ती में भी
आएगा भूचाल, मित्र दिन काट रहे हैं।

47

तूठेगी कुछ माई, ईश्वर के भजन करो
टूटेगी महँगाई, ईश्वर के भजन करो।

सेठों के तंबू से तने हुए पेटों की
कम होगी गोलाई, ईश्वर के भजन करो।

मेहनतकश लोग सभी अब अपनी मेहनत की
लेंगे पाई-पाई, ईश्वर के भजन करो।

हिन्दू और मुस्लिम इन नेताओं के रहते
होंगे भाई-भाई, ईश्वर के भजन करो।

इनकी, उनकी, सबकी अब रिश्वत दिए बिना
होगी कुछ सुनवाई, ईश्वर के भजन करो।

निर्धन और धनिकों के, मध्य की, भाषण से
भर जाएगी खाई, ईश्वर के भजन करो।

बिना खड़े हुए अपने खुद के पैरों पर खुद
होगी कुछ मनचाही, ईश्वर के भजन करो।

❑❑

48

गोपी जब से टोपी धारण करता है
दगियल भैंसे की मानिन्द अकड़ता है।

रहन-सहन है उसका संग एम.एल.ए. के
होटल में ही वह इन दिनों ठहरता है।

पहले एक झोंपड़ी होती थी लेकिन
अब कमरे पर झंडा सदा फहरता है।

माल-मलीदे मिलने लग गए मुफ्ती के
सो लोहार का 'अहरन' बना विचरता है।

49

आप मांदगी की जैसे-जैसे दवाई करते गए
मरीज़ अधिक दबते गए और मरते गए।

सर्द हुए, जैसे-जैसे तुम्हारे वायदों की घुट्टी पी
सन्निपात टूटने की जगह पाँव ठंडे पड़ते गए।

आपने काग़ज़ों के ऐसे चक्रव्यूह रचे
हमने जैसे-जैसे निकलने की कोशिश की, घिरते गए।

आप एक हैं कि पेट के बढ़ने की फ़िक्र है
हम एक हैं, नहीं पेट के गड्ढे भरे गए।

चुनते रहे आप, आपके लिए मोती बनते रहे
थे आँखों से हमारी जो आँसू झरते गए।

इंतज़ार करते कि जीते जी ब्याज तो चुकेगा
हम स्वयं को ही आपके गिरवी रखते गए।

❑❑

50

क्यों करता है भूख से लड़ाई, कुछ होश कर
मत मृत्यु को निमंत्रण दे भाई, कुछ होश कर।

यूँ हाथ पर हाथ रखे कभी नहीं होंगे—
दूर ये कष्ट के दिन कुछ होश कर।

तू दाने-दाने को तरसता है एक तरफ़
दूसरी तरफ़ वे लड्डू-पेड़े खा रहे हैं, कुछ होश कर।

नियति माँ है, बेटे को भूख कैसे लिखेगी
भाग्य का यह भ्रम झूठा है, कुछ होश कर।

ये हँस-हँसकर शाबाशी देनेवाले
भीतर से भेड़ियों जैसे हैं, कुछ होश कर।

तुम्हारे बच्चे को मूंमायां का दोष नहीं[1]
उसके ये भूत चिपके हुए हैं, कुछ होश कर।

---

1. मूंमायां का दोष नहीं : दैविक दोष नहीं है

51

गीत भी कोई
यों लिखे जाने की चीज़ है?
मेरी समझ में तो
वह गुनगुनाने की चीज़ है
मन ही मन
एक-दो दिन नहीं—
आजीवन।

आपने यह क्या हठ-योग
साध रखा है
प्रीत को हँडिया में
राँध[1] रखा है
क़लम हाथ में लिए
बैठे हो यों
ज्यों
सिर पर कफ़न बाँध रखा है।

मीत भी क्या यों रिझाने की चीज़ है
मेरी समझ में वह बहलाने की चीज़ है।

मन से मन
एक दो दिन नहीं—
आजीवन।

---

1. राँध : पका

शब्द क्या पत्थर है
कि लिया
और क़लम की करनी से
कल्मष में
चुन दिया।

आप यह नई नींव खोद रहे हैं,
या रही-सही नींव खोद रहे हैं।

भाव भी क्या
उपजाने की चीज़ है
मेरी समझ में तो
यह भाने की चीज़ है

पूजन-अर्चन
एक दो दिन नहीं—
आजीवन।

❑❑

52

घर से दफ़्तर
और
दफ़्तर से घर
जिए।

हम जिए तो
मात्र यह सफ़र
जिए।

एक भूख चक्र-जैसी जी
लौट-लौट आती प्यास पी

अपशकुन में घर से
निकले हम
लौटे तो रहे
अपशकुन वही

ज्यों-ज्यों जीने के
जतन किए
त्यों-त्यों बार-बार
मर, जिए।

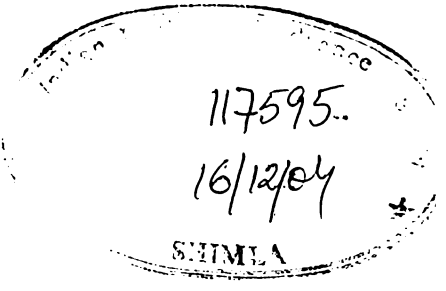
117595
16/12/04
SHIMLA

ग-गीत कवि मोहन आलोक का राजस्थानी से अनूदित नवगीत संग्रह है। साहित्य में ग्रामीण परिवेश और कृषक जीवन को प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करने का साहस इस काव्य-कृति में देखा जा सकता है। इन गीतों में काव्य की अतिशयोक्तियाँ नहीं, वरन् भोगा हुआ यथार्थ व्यंजित हुआ है। समसामयिक समस्याओं, ग्रामीण राजनीति, विषमताओं-विसंगतियों और ग़रीबी के बीच मानव जीवन में राग और रंग की तलाश करतीं ये रचनाएँ ठेठ ग्रामीण समाज की अंतरंग चेतना को सहज रूप में उद्‌घाटित करती हैं। यहाँ भाषा, शिल्प के साथ बिम्बों की नवीनता भी रेखांकित किए जाने योग्य है, जिनमें राजस्थानी जीवन और परिवेश को जीवंत रूप में उकेरा गया है।

मोहन आलोक (जन्म : 3 जुलाई, 1942) राजस्थानी में प्रयोगधर्मी कवि के रूप में विख्यात हैं। आधुनिक राजस्थानी कविता में डांखंठो, सॉनेट तथा नवगीत के क्षेत्र में आपने विपुल योगदान दिया है और आप साहित्य अकादेमी पुरस्कार वर्ष 1983 समेत कई संस्थाओं से सम्मानित हो चुके हैं। गद्य और पद्य में समान गति रखनेवाले आलोक की प्रमुख पुस्तकें हैं—*ग-गीत, डांखका, चित मारो दुख नै, सौ सॉनेट, चिड़ी री बोली लिखौ, वनदेवी : अमृता* आदि।

युवा कवि-आलोचक **नीरज दइया** राजस्थानी में संपादक एवं अनुवादक के रूप में भी पहचाने जाते हैं। निर्मल वर्मा और अमृता प्रीतम की कृतियों के राजस्थानी अनुवाद के साथ आपके मौलिक काव्य-संग्रह—*साख* तथा *देसूंटो* चर्चित रहे हैं। *ग-गीत* की अनुवाद-प्रक्रिया में कवि श्री मोहन आलोक का सान्निध्य अनुवादक को मिला, जिससे प्रस्तुत अनुवाद सुंदर, सहज, लयात्मक और प्रामाणिक बन सका है।

मूल्य : 50 रुपए

ISBN : 81-260-1901-8

Library IIAS, Shimla
H 817.51 Aa 11 D
00117595

ISBN : 81-260-1901-8

आवरण चित्र : भावना चौधरी चन्द्रा